प्राणायाम : एक चिन्तन

☐ महासती पुष्पावती
साहित्यरत्न

हठयोग में प्राणायाम एक महत्त्वपूर्ण अंग है। पतंजलि के स्वरचित योगसूत्रान्तर्गत अष्टांगयोग में आसनों के लिए तीन और प्राणायाम के लिए चार सूत्र प्राप्त होते हैं।[1] लेकिन आसन और प्राणायाम सम्बन्धी विस्तृत विश्लेषणात्मक विवेचन हठयोग के ग्रन्थों में ही अधिक प्राप्त होता है। पतंजलि ने जिस दार्शनिक भूमि को प्रस्तावित करने का प्रयत्न किया है, उसमें प्राणायाम जैसे अंगों को एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। परन्तु इस लघु-काय निबन्ध में पतंजलि के सूत्रों का विवेचन करना हमारा उद्देश्य नहीं है। यहाँ पर, हम हठयोग-साहित्य और जैन साधना साहित्य के आधार पर प्राणायाम सम्बन्धी कुछ विचार प्रस्तुत कर रहे हैं।

साधना-मार्ग में शरीर पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है; और इस नियन्त्रण के लिए प्राणायाम एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इसीलिए प्रायः सभी साधना सम्प्रदायों में प्रमुख रूप से प्राणायाम सम्बन्धी उल्लेख—कुछ भेद के साथ प्राप्त होते हैं। हमें उपनिषदों में प्राण सम्बन्धी अनेक रूपों का उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे प्राण-जप, प्राण-धारणा, प्राण-रोध, प्राण-स्पन्दः, प्राणादिवायवः आदि। त्रिशिखी ब्राह्मण उपनिषद् में दस प्राणों का उल्लेख है।[2] कुछ इसी तरह का उल्लेख हमें ध्यानबिन्दु उपनिषद् और ब्रह्मविद्या उपनिषद् में भी मिलता है। इन उपनिषदों में विस्तार के साथ इन प्राणों के स्थान और कार्य का वर्णन किया गया है। प्राणजप या संयम आदि द्वारा कुण्डलिनी से सम्बन्ध जोड़ा गया है। षट्चक्र मण्डल में ज्ञानदीप प्रज्ज्वलित हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्य अनेक अनूठे अनुभव बताने का प्रयत्न किया गया है। पतंजलि के 'प्रकाश-आवरण-क्षय' का भी अर्थ सम्भवतः कुछ इसी प्रकार से होता है। यद्यपि इन शब्दों का आधुनिक विश्लेषणात्मक भाषा-शैली से अर्थ लगाना बहुत कठिन है, फिर भी यह निश्चित है कि प्राचीन आचार्यों के सम्मुख, इन शब्दों के कुछ न कुछ अर्थ निश्चित रहे होंगे। आसन और प्राणायाम के वर्णन के बाद, शरीर पर होने वाले इनके परिणामों का वर्णन, इस बात की ओर संकेत करता है कि प्राचीन आचार्य, तत्त्वचिन्तन करने के साथ-साथ व्यावहारिक अनुभूतियाँ भी प्राप्त करते होंगे। इन अनुभूतियों की भाषा कुछ अगम्य सी प्रतीत होती है—जो आज के चिन्तकों और साधकों से स्पष्टीकरण की अपेक्षा रखती है।

हठयोग में प्राण के सम्बन्ध में कहा गया है कि जब तक प्राण चल रहे हैं तभी तक शरीर जीवित रहता है। प्राण के साथ ही शरीर का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। प्राणायाम के 'युक्त' अभ्यास से सर्वरोगों से मुक्ति मिल जाती है और प्राणायाम के 'अयुक्त' अभ्यास से बहुत सारे रोग उत्पन्न भी हो जाते हैं। प्राणायाम के सन्दर्भ में 'युक्त' और 'अयुक्त' अभ्यास और 'शोधन-क्रिया' का अपना विशिष्ट महत्व है। हम यहाँ 'युक्त' और 'अयुक्त' अभ्यास पर ही विवेचन करने का प्रयत्न करेंगे।

प्राणायाम से जिस प्रकार शरीर शान्त होता है उसी प्रकार मन भी निराश्रय होता है। इसी निराश्रय अवस्था का विस्तार करना, सम्भवतः प्राणायाम का हेतु रहा होगा। यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि प्राणायाम अपने आप में कोई साध्य नहीं है अपितु साधना-मार्ग का एक सोपान है। अतः यह साधकों के लिए आवश्यक तो है किन्तु अनिवार्य नहीं। अध्यात्म-साधना के विभिन्न मार्गों में से यह भी एक मार्ग है; और साधक की अवस्थानुसार आसन तथा प्राणायामों का उपयोग व स्वरूप बदला जा सकता है और बदलना भी चाहिये।

हठयोग में इसका वर्णन शारीरिक आरोग्यता के सन्दर्भ में भी किया गया है। प्राणायाम करने से मन प्रसन्न होगा और शरीर में किसी प्रकार के दोष नहीं रहेंगे। प्राणायाम के इस विवेचन को लेकर ही आधुनिक शरीर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्रियों ने रोग-निदान और रोग-मुक्ति के लिए प्राणायाम का उपयोग करना आरम्भ किया है। बहुत से अस्पतालों में प्राणायाम की प्रारम्भिक अवस्थाएँ शरीर में स्थिरता लाने तथा रक्त संचार के लिए उपयोग में लाई जा रही हैं।

प्राणायाम के सन्दर्भ में, योगाचार्यों ने आहार और आसनों के भी महत्त्व का प्रतिपादन किया है। प्राणायाम प्रारम्भ करने से पूर्व आसन में स्थिरता प्राप्त कर लेना आवश्यक है। साथ ही शरीर-शोधन की दृष्टि से, शरीर की आवश्यकतानुसार, षट्कर्मों का उपयोग करना भी श्रेयस्कर है। आसनों की सिद्धता के लिए आहार का पोषणयुक्त होना आवश्यक है। प्राणायाम के सन्दर्भ में पुनः आहार सम्बन्धी निर्देश दिया गया है जो इस बात का सूचक है कि साधक को इस संदर्भ में पर्याप्त सावधान रहना चाहिए।

ऊपर हमने जिन 'युक्त' और 'अयुक्त' शब्दों का उल्लेख किया है, योगाचार्यों ने उनका स्पष्टीकरण नहीं दिया है। भगवद्गीता में भी जब युक्त-आहार-विहार की चर्चा की गयी है, तो वहाँ भी स्पष्टीकरण की समस्या सामने आती है। भारतीय परम्परा अथवा योग परम्परा में इस प्रकार के शब्दों का उपयोग सम्भवतः दो बातों की ओर संकेत करता है। एक तो प्राचीन आचार्य ऐसा चाहते रहे होंगे कि योग सम्बन्धी सभी अभ्यास गुरु के मार्गदर्शन में सम्पन्न हों और दूसरा यह कि साधक पूर्णरूपेण जागरूक हो। आहार कितना लेना, किस आसन का उपयोग करना, तथा प्राणायाम कितना और कब करना आदि सभी बातों में उसे किसी प्रकार का भी भ्रम नहीं होना चाहिए। हमारी धारणा यह है कि यहाँ गुप्त रखने लायक कुछ भी नहीं है। साधक अपने स्वयं के अनुभव द्वारा अपने सम्बन्ध में युक्त-अयुक्त आहार, आसन, प्राणायाम उसके परिमाण, और समय आदि का निश्चय स्वयं कर सकता है, परन्तु उसको अभ्यास करने से पूर्व शास्त्रीय-ज्ञान आवश्यक है। सूत्रमय भाषा के प्रयोग करने का अभिप्राय भी सम्भवतः यही रहा होगा।

हठयोग में प्राणायाम का वर्णन 'कुम्भक' शब्द से किया गया है। यहाँ पर यह भी समझ लेना आवश्यक है, कि प्राण, कुम्भक, मारुत, वायु, वात आदि शब्द सन्दर्भभेद के अनुसार प्रयोग किये गये हैं। इन आठ कुम्भकों का वर्णन जहाँ-जहाँ किया गया है वहाँ-वहाँ शरीर पर होने वाले परिणामों का भी निर्देश मिलता है। उदाहरणार्थ, श्लेष्मा दोष से मुक्ति, आलस्य से मुक्ति, पित्त आदि दोषों से उत्पन्न होने वाले रोगों से मुक्ति, शरीर-अग्नि की वृद्धि और अन्त में आरोग्यता तथा शारीरिक प्रसन्नता का वर्णन है।

अध्यात्म-मार्ग का अनुसरण करने वाले साधक प्रसन्न दीखने चाहिये। सामाजिक दृष्टि से उनकी प्रसन्नता का बड़ा महत्त्व है। इसी तरह साधक निरोगी भी होना चाहिए, जिससे कि वह स्वावलम्बन का जीवन जी सके और साथ ही अपने सद्मार्ग पर दूसरों को आकर्षित कर सके।

प्राणायाम के जो आठ प्रयोग बताये जाते हैं, उसका हेतु सम्भवतः यह होगा कि साधक अपनी आवश्यकतानुसार कोई एक प्राणायाम निश्चित कर ले। गुरु के बताये हुए मार्ग में से, अपनी रुचि और शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार कोई भी प्राणायाम निश्चित किया जा सकता है। इसका निश्चय करने से पूर्व शरीर पर नियन्त्रण और विचार करने की क्षमता अपेक्षित है। विभिन्न प्रकार के प्राणायाम मानव-स्वभाव की विभिन्नता और प्रयोगबुद्धि की ओर संकेत करते हैं। इससे यह बात भी सिद्ध होती है कि प्राणायाम अति आवश्यक नहीं है। सम्भवतः इसलिए ही पतंजलि ने इसका उल्लेखमात्र ही किया है। प्राणायाम की आवश्यकता अनुभव करने के बाद, उसका स्वरूप और मर्यादायें या तो साधक स्वयं निश्चित करें या उसका मार्गदर्शक, गुरु अथवा सम्प्रदाय। प्रत्येक स्थिति में सम्पूर्ण उत्तरदायित्व साधक का ही होगा। गुरु, शास्त्र, सम्प्रदाय आदि आधार मात्र हैं। शरीर पर होने वाले परिणाम (युक्त-अयुक्त) साधक को स्वयं ही अनुभव करने होंगे।

योग-मार्ग में ये साधना पद्धतियाँ शरीर से आरम्भ होकर एक निश्चित दिशा की ओर ले जाती हैं। उसी दिशा का वर्णन जैन-साहित्य में भी उपलब्ध है। जैन आचार्य हेमचन्द्र के योगशास्त्र में हमें प्राणायाम सम्बन्धी विस्तृत वर्णन मिलता है। आचार्य ने आसनों का उचित अभ्यास करने के पश्चात् प्राणायाम प्रारम्भ करना उपयोगी बताया है। प्राणायाम के सम्बन्ध में आचार्य की मान्यता है कि बिना इसके मन को जीता नहीं जा सकता और मन को जीतने के पवन-जय आवश्यक है। उन्होंने शेष सारी प्रक्रियाएँ योग के अनुसार ही मान्य की हैं। प्राणायाम से होने वाले लाभ भी उसी प्रकार बताये गये हैं। प्राणायाम करते समय प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान वायु को वश में करने के लिए कुछ बीजाक्षरों का प्रयोग बताया गया है। यहाँ पर योग परम्परा की अपेक्षा थोड़ा-सा भेद दिखाई देता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुण्डलिनी का वर्णन भी इन बीजाक्षरों की सहायता से किया गया है। जैन-आचार्यों ने वायु-विजय का सम्बन्ध रोग-मुक्ति के साथ जोड़ा है। आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों के लिए और योगशास्त्र का अभ्यास करने वाले चिन्तकों के लिए यह वर्णन एक प्रकार का आह्वान है। अगर आधुनिक जीवन में उसका समुचित प्रतिफल प्राप्त होता है तो योग-मार्ग की चिकित्सा पद्धति में, जैन-योग-शास्त्र का प्रदाय निश्चय ही अनूठा सिद्ध होगा।

आचार्य हेमचन्द्र के योगशास्त्र में प्राणायाम के साथ-साथ, स्वर-शास्त्र का भी संकेत मिलता है। स्वर-शास्त्र के अनुसार सूर्यनाड़ी और चन्द्रनाड़ी, शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष में प्रत्येक तिथि को बदलती रहती हैं और कभी सूर्यनाड़ी, कभी चन्द्रनाड़ी और कभी पिंगला नाड़ी का प्रवाह रहता है। हेमचन्द्राचार्य ने इनके लक्षणों का विस्तृत वर्णन किया है और इन नाड़ियों के चलने के साथ-साथ, जीवन सम्बन्धी सभी प्रकार के लक्षणों और भविष्य-ज्ञान सम्बन्धी-लक्षणों का भी वर्णन किया है। यह आश्चर्य की ही बात है कि विभिन्न प्रकार के लक्षणों का वर्णन देकर मनुष्य की आयु निश्चित करने का प्रयास किया गया है। स्वर-शास्त्र के साथ-साथ शरीर में होने वाली प्रक्रियाओं का भी वर्णन मिलता है। प्राणायाम के साथ अन्य विषय किस प्रकार सम्बन्धित हैं, इसका भी सुन्दर विवेचन आचार्य हेमचन्द्र ने दिया है। यह इस बात का द्योतक है कि उस समय की परम्परा में निश्चित ही सूक्ष्म अध्ययन करने की प्रवृत्ति रही होगी। आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के इस युग में, अन्य अनेक प्राचीन विद्याओं की तरह, यह विषय भी संशोधन के लिए शास्त्रज्ञों की राह देख रहा है।

इस प्रकार संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि प्राणायाम की प्रक्रिया के साथ अनेक विषय गुँथे हुए हैं और अप्रत्यक्ष रूप से यह भी स्पष्ट है कि साधना-मार्ग में साधना सम्बन्धी भेद महत्वपूर्ण नहीं हैं।

सन्दर्भ और सन्दर्भ स्थल

१ पतंजलि—योगसूत्र २-४९ से ५२ तक
२ प्राणापानौ समानश्च उदानोव्यान एव च।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनजयः॥

★★★

उपयोगे विजातीय - प्रत्ययाव्यवधानभाक्।
शुत्रैकप्रत्ययो ध्यानं, सूक्ष्माभोगसमन्वितम्॥
—द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका १८/११

स्थिर दीपक की लौ के समान मात्र शुभ लक्ष्य में लीन और विरोधी लक्ष्य के व्यवधानरहित ज्ञान, जो सूक्ष्म विषयों के आलोचन सहित हो, उसे ध्यान कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org